

# देव धर्म

# की

# देन

लेखक :-

एस . पी . कनल

रीडर दर्शन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

अनुवादिका :-

डा. पुष्पा बंसल

रीडर रोहतक, विश्वविद्यालय

जिस प्रकार भौतिकी के इतिहास में प्रयोगात्मक भौतिकी एक मात्र भौतिकी नहीं है, उसी प्रकार धर्म के इतिहास में “देव-धर्म” भी एक मात्र धर्म नहीं है। प्रत्येक विज्ञान तथा संस्था का इतिहास होता है, जो इस बात का प्रमाण है कि उन में परिवर्तन होते रहे हैं। हम उस में वृद्धि तथा विकास होते देख सकते हैं। हमें यह मालूम है कि आधुनिक प्रयोगात्मक भौतिकी किस प्रकार अरस्तु की ‘अनुमानिक भौतिकी’ से भिन्न है। आज की भौतिकी अरस्तु की भौतिकी से अपने विस्तार एवं ज्ञान की गहराई में कहीं श्रेष्ठ है। इस का स्वरूप वैज्ञानिक है, जिस का अर्थ हुआ कि इस के परिणाम वैज्ञानिक विधि पर खरे उतरे हैं। ज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिक-विधि मानव की श्रेष्ठतम खोज है। इस विधि को अपनाने से मानव को ज्ञान की वह अनुपम उपलब्धि हुई है कि जो इस विधि तथा वैज्ञानिक-यंत्रों के अभाव में नितांत अकल्पनीय थी। सभी अस्तित्वों के सम्बन्ध में ज्ञान का मानक (Standard) वैज्ञानिक-ज्ञान है। आज हर प्रकार की शिक्षा वैज्ञानिक-ज्ञान-परक (उन्मुख) है। यह वास्तव में हमारे जीवन का जीवन एवं हमारे प्राणों का प्राण है। हमें स्वयं को इससे पूरी तरह भर लेना है। भ्रमांड संबंधी कोई भी अन्य ज्ञान आज इस ज्ञान का स्थान नहीं ले सकता। यही नहीं, अपितु यह वैज्ञानिक ज्ञान तो आज सभी सामाजिक संस्थाओं को भी प्रभावित कर रहा है। धर्म भी एक सामाजिक संस्था के रूप में इससे बाहर नहीं हो सकता। यदि इसे समाज की एक अत्यंत महत्वपूर्ण संस्था के रोंप में बने रहना है और हमारे जीवन में एक प्रभावपूर्ण भूमिका निभाना है तो इसे भी वैज्ञानिक बनना होगा। यदि “विज्ञान एवं धर्म” में झगडा अथवा असहमति हो तो धर्म को ही हारना होगा क्योंकि वैज्ञानिक सत्यों का निषेध नहीं किया जा सकता। इसलिए धर्म एवं विज्ञान में कोई संघर्ष नहीं होना चाहिए। यदि धर्म इश्वर की धरना से चिपका रहता है तो उसमें और विज्ञान में संघर्ष अनिवार्य है। बीसवीं शताब्दी के महानतम भौतिक-शास्त्री आइन्सटाइन इस विषय में अपनी जीवनी ‘आउट आव थी लेटर ईअर्स’ (Out of the Later Years) में कहते हैं:-

“यद्यपि मैंने ऊपर कहा है कि धर्म एवं विज्ञान में वास्तव में कोई वैध संघर्ष नहीं हो सकता, पर मैं अपने इस कथन के एक महत्वपूर्ण अंग के सम्बन्ध में एक स्पष्टीकरण देना चाहूंगा। जो ऐतिहासिक धर्मों के व सात्विक सार-तत्त्व के विषय में है। वह अंग इश्वर की धरना के सम्बन्ध में है। मानवता के आत्मिक-विकास के आरंभिक दिनों में मानवीय कल्पना ने मानव के ही रूप में देवताओं की सृष्टि की। वे देवता अपनी इच्छा के अनुसार जगत के व्यवहार या घटना-चक्र को निर्धारित अथवा नियंत्रित करते थे। मानव ने जादू तथा प्रार्थना के बल पर उन देवताओं की शक्तियों को अपने स्वार्थ के हित

में मोड़ने का प्रयत्न किया | आज के धर्मों में पढ़ाया जाने वाला इश्वर उन पुराने देवताओं की धारणा का उदात्तिकर्ण है | उदाहरणतयः इश्वर की मानव रूप में धरना (Anthropomorphic Character) इससे सपष्ट है कि मानव उससे प्रार्थना करता है और अपनी इच्छाओं की पूर्ती चाहता है |

इस धारणा के साथ कुछ निश्चित दुर्बलताएं जुड़ी हुई हैं कि जिनका इतिहास के आरम्भ से ही दुखप्रद अनुभव किया जाता रहा है | जैसे यदि वह इश्वर सर्वशक्तिमान है तो दुनिया की हर घटना, प्रत्येक मानवीय विचार तथा प्रत्येक मानवीय भावना व इच्छा वास्तव में उसका ही कार्य है | इस सूरत में ऐसे सर्वशक्तिमान तत्व के रहते, मानव को अपनी क्रियाओं अथवा विचारों के लिए उत्तरदायी कैसे ठहराया जा सकता है ? मानव को पुरस्कार व दंड देते समय एक प्रकार से वह (सर्वशक्तिमान) स्वयं अपने प्रति ही न्याय कर रहा होगा | अब इस स्थिति को उसके सर्वमान्य गुणों मंगल्यता एवं न्याय-परायणता के साथ कैसे जोड़ा जा सकता है ? ”

“ आज की दुनिया में वर्तमान विज्ञान तथा धर्म के क्षेत्र में संघर्ष का कारण यही व्यक्तिगत ईश्वर की धारणा है | विज्ञान का उद्देश्य ऐसे सामान्य नियमों की स्थापना करना होता है जो कि दिक् (Space) और काल (Time) में तत्वों एवं घटनाओं का पारस्परिक सम्बन्ध निर्धारित करें | जितना ही एक व्यक्ति सभी घटनाओं में व्याप्त एक व्यवस्थित क्रम देखता है, उसकी यह धारणा दृढतर होती जाती है कि इस व्यवस्थित क्रम के अतिरिक्त संसार में और किसी भी व्यवस्था के अस्तित्व की संभावना नहीं रहती | वह किसी मानवीय शासन तथा दैविक इच्छा या शासन को प्राकृतिक घटनाओं के स्वतंत्र कारण के रूप में नहीं देख सकता |”

“ धर्म के शिक्षकों को नैतिक भलाई के संघर्ष के लिए वास्तव में इतना ऊंचा उठाना पड़ेगा कि वह व्यक्तिगत ईश्वर की धारणा का त्याग कर देन—वह इश्वर जो कि आतंक तथा आशा के रूप में, अतीत में, पादरियों के हाथों में अपार शक्ति देता रहा है | अपनी साधना में उन्हें उन शक्तियों को आधार बनाना पड़ेगा, जो कि स्वयं मानवता में ही सत्य, शिव और सुन्दरता को विकसित कर सकती हैं, निश्चय से ही यह कार्य कठिन है, पर साथ ही यह कहीं अधिक मूल्यवान भी है |”

निर्व्यक्तिक (Impersonal) इश्वर अर्थात् ब्रह्म की धारणा कुछ कम अवैज्ञानिक नहीं है | यहाँ बुद्ध को उद्धृत करना उच्चतम होगा | महात्मा बुद्ध ने अन्थापिण्डिका से कहा “यदि यह संसार इश्वर ने नहीं रचा तो क्या यह नहीं माना जा सकता कि समस्त अस्तित्व, प्रतिबन्ध रहित, अज्ञेय, ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है ? यदि ‘परब्रह्म’ का तात्पर्य किसी ऐसे तत्व से है जो किसी भी ज्ञात वास्तु से किसी भी प्रकार सम्बंधित नहीं है, तब तो उस तत्व का अस्तित्व किसी भी तर्क के द्वारा स्थापित ही नहीं किया जा सकता |

भला यह कैसे जाना जा सकता है कि कोई ऐसी चीज़ है जिसका किसी से कुछ भी सम्बन्ध ही नहीं है ? सत्य यह है कि समस्त विश्व सम्बन्ध-बद्ध है | ऐसी कोई भी वास्तु न तो है, न हो सकती है जिसका सम्बन्ध किसी से नहीं है | भला वह जो किसी पर आश्रित नहीं है, किसी से सम्बंधित नहीं है, ऐसी वस्तुओं की रचना कैसे कर सकता है जो एक दुसरे से सम्बद्ध है तथा अपने अस्तित्व के लिए एक दूसरे पर आश्रित है ? पुनः क्या वह ब्रह्म एक है अथवा अनेक ? यदि वह एक ही है तो वह उन विभिन्न वस्तुओं की उत्पत्ति का कारण कैसे हो सकता है जो कि हम जानते हैं कि वह विभिन्न कारणों से उत्पन्न होती हैं ? और यदि उतने ही ब्रह्म हैं जितने कि पदार्थ, तो भला वे परस्पर सम्बद्ध कैसे हो सकते हैं ? यदि वह ब्रह्म सब पदार्थों एवं सब स्थानों में व्याप्त है तो वह निर्माता नहीं हो सकता | क्योंकि फिर तो बनाने को कुछ बचता ही नहीं | और आगे, यदि वह ब्रह्म निर्गुण है, तो उससे उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थ भी निर्गुण ही होने चाहियें | जबकि वास्तविकता यह है कि इस संसार में प्रत्येक वास्तु सदा सर्वदा 'गुणमयी' होती है, अतः उनका स्रष्टा निर्गुण ब्रह्म नहीं हो सकता | यदि वह 'ब्रह्म' गुणों और विशेषताओं से भिन्न है, (अर्थात् 'निर्गुण निर्विशेष' है ) तो वह गुणमयी विशेषताओं युक्त वस्तुएं निर्मित करके उनमें स्वयं को कैसे प्रतिभासित करता रह सकता है ? और भी, यदि वह ब्रह्म अपरिवर्तनशील है, तो सब वस्तुएं भी अपरिवर्तनशील होनी चाहियें, क्योंकि 'परिणाम' की प्रकृति 'कारण' की प्रकृति से भिन्न नहीं हो सकती | परन्तु संसार में प्रत्येक वस्तु परिवर्तित होती है, क्षय होती है | तो फिर वह ब्रह्म अपरिवर्तनशील कैसे हो सकता है ? और एक बात और, यदि वह सर्वव्यापक ब्रह्म ही प्रत्येक वास्तु का कारण है, तो हम मुक्ति क्यों ढूँढते हैं ? क्योंकि उस स्थिति में तो हमारे निज के अन्दर भी ब्रह्म द्वारा बनाई गई सभी विपत्तियों एवं वेदनाओं को धैर्यपूर्वक सहन करते चले जाना चाहिए |” (अश्वघोष “बुद्धचरित” से )

वैज्ञानिक मस्तिष्क को एक निरीश्वरवादी, निर्ब्रह्म, वैज्ञानिक धर्म की आवश्यकता है | जैसे महान जीवशास्त्री जूलियन हक्सले कहते हैं:-

“इस धर्म (वैज्ञानिक धर्म) के विश्वास--- किसी अति प्राकृतिक रूप (Supernatural) का उदघाटन नहीं करते, अपितु वे तो विज्ञान एवं ज्ञान द्वारा मानव एवं विश्व के सम्बन्ध में किए गए उदघाटन हैं।”

‘देव धर्म’ एक वैज्ञानिक धर्म प्रस्तुत करता है | इसके संस्थापक भगवान् देवात्मा अपने आत्म-चरित्र ‘मुझ में देव जीवन का विकास’ खंड प्रथम, अध्याय सत्रह में अपनी खोज की विधि के विषय में फरमाते हैं:

“इश्वर विषयक मिथ्या विश्वास के चले जाने पर और वैज्ञानिक विधि के पूर्ण अधिकार में आ जाने से जो ज्ञान इस विधि के अनुसार सत्य प्रमाणित हो, मेरे लिए वही

ज्ञान ग्रहणीय रह गया | प्राचीन व नवीन, प्रचलित व अप्रचलित, आस व अनापत, स्वदेशी व विदेशी आदि के विचार से कोई बात विश्वसनीय न रही | जो कुछ पूर्ण विधि के द्वारा अनुमोदित और समर्थित हो, वही सत्य ग्रहणीय और उसी का पूना और उसी को प्राप्त करना मेरा सार लक्ष्य बन गया |”

(मुझ में देव जीवन का विकास’ स्टाइसवां परिच्छेद, पृ. १८८)  
इस समय से ‘विश्व तत्व’ और ‘मनुष्य तत्व’ मेरे अध्ययन के मुख्य विषय बन गए | इन के ठीक अध्ययन के लिए जिस जिस वैज्ञानिक विधि की आवश्यकता थी, उसके अनुराग ने धीरे धीरे अब मुझ पर पूर्णतः अधिकार लाभ कर लिया था | परीक्षा तत्व का अनुराग उन्नत होते होते मुझ में अब यहाँ तक पहुँच चुका था, और वह ठीक युक्ति तत्व के विकास से यहाँ तक मजबूत हो चुका था कि उसके साथ साथ कल्पना-मूलक किसी मिथ्या विश्वास के वास करने की गुंजाइश नहीं रही थी | (अनु. २६, पृ.१८२).

इससे पता लगता है कि देव धर्म के संस्थापक किस प्रकार विज्ञान से सहमत थे कि किसी भी स्रोत से उपलब्ध हुआ विश्वास वैज्ञानिक विधि की परख की कसौटी पर खरा उतरने के पश्चात ही सत्य माना जा सकता है | वह विज्ञान के साथ पूर्णतया सहमत थे कि यह ब्रह्माण्ड स्वतः पूर्ण है, तथा प्रकृति में भौतिक, रासायनिक, जैविक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक अथवा आत्मिक जो कुछ भी घटित होता है, उसका कारण प्रकृति के भीतर ही मौजूद है | प्रकृति की किसी भी घटना का कारण हम प्रकृति के बाहर व्याप्त किसी ईश्वर या पुरुष जैसे निराकार असतितव में नहीं खोज सकते | मानव का शरीर और आत्मा दोनों ही अपनी उत्पत्ति, विकास एवं पूर्णता में प्रकृति के अभिन्न अंग हैं | समस्त आदर्श एवं मूल्य मानव की प्रकृति में ही आधारित हैं | अस्तु, अमेरिका के दार्शनिक सान्तायना के शब्दों में, “ प्रत्येक आदर्श का एक प्राकृतिक आधार होता है एवं प्रत्येक प्राकृतिक उपादान का आदर्श विकास |”

एकमात्र ‘देव धर्म’ ही विज्ञान सम्मत होने का दावा कर सकता है क्योंकि धर्म के क्षेत्र में सत्य की खोज एवं पड़ताल के लिए वैज्ञानिक साधनों को केवल यही धर्म आवश्यक मानता है एवं स्पष्टतया स्वीकार करता है | देव धर्म एक वैज्ञानिक धर्म है | ऐसा कहने का अर्थ केवल यही नहीं होता कि यह अतिप्राकृतिकता (Supernaturalism) में विश्वास नहीं रखता अथवा यह किसी विशेष काल में वैज्ञानिक निष्कर्ष को स्वीकार करता है | इसका अर्थ तो यह है कि विज्ञान के सामान यह भी मानता है कोई भी विश्वास इतना पवित्र नहीं है कि उसका पुनर्परीक्षण अथवा पुनर्मुल्यांकन न हो सके, अथवा नए प्रकट हुए तथ्यों के प्रकाश में वह अस्वीकार न किया जा सके | जैसे विज्ञान के क्षेत्र में नए तथ्यों व सत्यों के आग्रह पर पुराने विश्वासों में परिष्कार करना अपमान के स्थान पर गौरव का विषय है, ठीक इसी प्रकार देव धर्म भी इस आधार पर गौरवान्वित अनुभव

करता है कि यह वैज्ञानिक साधनों के आग्रह पर अपने मतों व विश्वासों को बदल लेने की आगया देता है ।

कोई भी ईश्वरवादी धर्म, परम्परावादी अथवा आधुनिक, वैज्ञानिक साधनों के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है । इस लिए केवल देव धर्म ही ऐसा धर्म है जिसका कि विज्ञान के साथ संघर्ष नहीं क्योंकि यह धर्म किसी विश्वास की सच्चाई के लिए उसकी वैज्ञानिक साधनों से पड़ताल अवश्य स्वीकार करता है । आधुनिक मानव को, जो लि धर्म की खोज में अपनी वैज्ञानिक मानसिकता खो नहीं देना चाहता, देव धर्म की यह प्रथम भेंट है ।

## विकास और धर्म

देव धर्म की दूसरी भेंट आधुनिक मानव को यह है --- ‘धार्मिक जीवन में विकासवादी दृष्टिकोण’ । इस विकासवादी दृष्टिकोण के लिए हम सहस्रों भौतिक शास्त्रियों, रासायनिकों, जीव वैज्ञानिकों, पुरातत्वविदों, मनोवैज्ञानिकों और के धीरे एवं विचारशील परिश्रम के प्रति आभारी हैं ।

जुलियन हक्सले इस विकासवादी दृष्टि को इस प्रकार प्रकट करते हैं ---“इस नई दृष्टि की मैं अत्यंत संक्षिप्त लघुतम रूपरेखा देने का प्रयास करता हूँ । हमारे वर्तमान बोध के अनुसार यह समस्त ‘वास्तविकता’ (Reality) सही अर्थ में ‘विकास’ की एक सार्वभौम प्रक्रिया है । यह प्रक्रिया तीन चरणों में घटित होती है । प्रथम चरण में भौतिक तथा कुछ सीमा तक रासायनिक प्रक्रिया से परिचलित निर्जीव (Inorganic) अथवा विश्व निर्माण (Cosmic) क्रिया, जिसके परिणाम स्वरूप पदार्थ का ऐसा संघात उत्पन्न होता है, जैसे नैबुला (Nebulae) नक्षत्र, एवं सौर-मंडल आदि । हमारे नक्षत्र मंडल में विकास का यह चरण कम से कम साठ खरब वर्षों से जारी है ।

‘उन कुछ स्थानों में जहाँ कि पदार्थ स्वयं प्रजननकारी बन गया है, वहाँ इनार्गेनिक (Inorganic) या निर्जीव चरण का स्थान जैविक (Organic) चरण ने ले लिया । यह प्रमुखतया ‘प्राकृतिक चयन’ नामक सिद्धांत के अंतर्गत घटित होता है तथा इस के परिणाम स्वरूप फूल, कीट, मछली आदि अत्याधिक विभिन्न तथा उच्चतर पदार्थगत उत्पत्ति की क्रियाएं घटित होती हैं । इसी चरण में मस्तिष्क का विकास तथा परिवर्धनशील उच्चतर चेतना का विकास भी होता है । हमारे गृह में यह प्रक्रिया लगभग तीन खराब वर्षों से जारी है ।

‘अंतिम चरण मनोवैज्ञानिक चरण है । अत्यंत विरले स्थानों में (निश्चित रूप से हम केवल एक ही स्थान जानते हैं ) जहाँ मानव मस्तिष्क मानवीय अनुभवों एवं उदभावनाओं को संचित रूप से परेशित करने की शक्ति के माध्यम से स्व-प्रजनक बन गया है । वहाँ यह मानवीय अथवा मनोवैज्ञानिक चरण आ गया है । संचित ज्ञान एवं

संचित प्रेषण प्रक्रिया द्वारा यह घटित होता है । इसके प्रभाव से धर्म सरीखे उच्चतर मनोवैज्ञानिक ज्ञान, वैज्ञानिक धारणाएं तथा श्रम-परिहारी-मशीनें, वैधानिक व्यवस्था तथा अधिकाधिक उच्चतर मनोवैज्ञानिक कार्य तथा कला-कार्य संभव होते हैं ।

‘इस गंभीर चरण की दहलीज़ पर हमारे मानव-पूर्ण पूर्वजों ने लगभग दस लाख वर्ष पहले कदम रक्खा था । किन्तु पूर्ण मानव बने उनको केवल कोई दस बीस हजार वर्ष ही हुए हैं । इसी समय से मनोवैज्ञानिक विकास ने भी वास्तव में प्रभावशाली बनना आरम्भ किया है । विकासकारी चरण के छोटे से समय में मानव ने कोई महत्वपूर्ण जैविक (Genetic) परिवर्तन नहीं आया है । उसका विकास तो प्रधानतया सांस्कृतिक ही हुआ है । यह विकास तो विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के विकास, उसके विचार अथवा उसकी तकनीकी कलात्मक सृजनाओं में देखा जा सकता है’ ।

‘नया प्रभावशाली धर्म जिन आदर्शों तथा विचारों पर आधारित होगा वे विकासवादी तथा मानववादी दोनों एकसाथ होंगे । विकासवादी मानववाद की दृष्टि में देवता मानव के सृजन नहीं अपितु उसकी सृजना है । बाह्य प्रकृति तथा आंतरिक अनुभवों के कुछ घटनाक्रम (Phenomena) को समझाने के लिए ही देवताओं की धारणाओं की उत्पत्ति हुई है । देवताओं की धारणा कुछ बाह्य प्रकृति (नेचर) एवं आंतरिक अनुभवों के कारणों के लिए एक पूर्व-विश्वास (Hypothesis) के रूप में आरम्भ होती है । फिर उन्नत हो कर यह कुछ अधिक संघटित धारणाओं का रूप लेती है कि जो धारणा प्राकृतिक घटनाओं (Phenomena) को स्पष्ट करने और समझाने का प्रयास करती है, और अंत में यही धारणा देवी-देवताओं को एक ऐसे अति-प्राकृतिक (Supernatural) शासक व्यक्ति का रूप दे देती है कि जो प्राकृतिक घटनाओं (Phenomena) को प्रभावित करने की समर्थ रखते हैं । देवी-देवताओं का विश्वास बढ़ने के साथ साथ यह विश्वास बढ़ता गया कि देवता समस्त विश्व के व्यापारों को प्रभावित कर सकते हैं, और यहाँ पहुँच कर सब देवता एक ईश्वर में लय हो गए । अर्थात् उनका स्थान एक ईश्वर ने ले लिया । परन्तु मानवीय ज्ञान विज्ञान के विकास के साथ ही साथ ब्रह्म अथवा ईश्वर के सर्व-नियंता होने का विश्वास टूटता चला गया’ ।

देव-धर्म का दृष्टिकोण विकासवादी है । विकासक्रम में ही वह आत्मा की उत्पत्ति मानता है । देव-धर्म ही मनुष्य में यह जागृति उत्पन्न करता है कि विश्व के भौतिक और जैविक क्रम से उसका अकाट्य सम्बन्ध है । उनके साथ उसे अपनी एकता का आभास हो जाता है । वह यह अनुभव प्राप्त कर लेता है कि भौतिक और जैविक संसार के कारण ही उनकी उत्पत्ति और सत्थिति है । वह विश्व के चारों विभागों अर्थात् भौतिक जगत, उदभिदद जगत, पशु जगत और मनुष्य जगत का एक अंश है । इन सब विभागों की सेवा करके उसको उनके साथ एकता सूत्र में बांधना है । देव धर्म मनुष्य को इस

महान सत्य का बोध कराता है कि उसके उच्चतम विकास और उसके जीवन की सफलता इन चारों जगत्‌ों की सेवा में है । एक विकासवादी धर्म ही यह धार्मिक दृष्टिकोण प्राप्त कर सकता है, क्योंकि केवलमात्र विकासवादी धर्म ही मानव के भौतिक, जैविक तथा सामाजिक वातावरण को यह सर्वोच्च महत्व दे सकता है । विकासवादी धर्म मानव के भौतिक, जैविक तथा सामाजिक वातावरण के प्रति सम्बन्ध को वही महत्व देता है जो कि एक ईश्वरवादी ईश्वर के साथ मानव के सम्बन्ध को देता है । ईश्वरवादी के लिए मानव के जीवन, उसके अस्तित्व और नियति का स्रोत ईश्वर है, जबकि विकासमूलक धर्म के अनुसार मानव के जीवन, अस्तित्व एवं नियति का स्रोत है प्रकृति या नेचर । विकासमूलक धर्म ईश्वर के स्थान पर प्रकृति की विकासमूलक प्रक्रिया को स्थापित करके मानव के आत्मिक जीवन के निर्माण के लिए पूर्व प्रतिष्ठित ठोस तत्वों को ईश्वर के स्थान पर स्थापित करता है ।

देव धर्म का यह विकासमूलक स्वरूप देव धर्म प्रवर्तक भगवान् देवात्मा के आत्म चरित्र से उद्घरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है । वह फरमाते हैं ----

“...मैं जो पहले ब्रह्मवादी था अब पूर्ण विश्ववादी बन गया । ईश्वर विश्वास के दिनों में यद्यपि मैं नेचर को मानता तो था, परन्तु तब उसे ईश्वर की उत्पन्न की हुई वास्तु जानता था । और ईश्वर को मुख्य जानकार उन्हीं को अपना सर्वस्व और सर्वोच्च सम्बन्धी विश्वास करता था । मैं उस काल में यद्यपि नेचर को देखता था, परन्तु उसके असल रंग रूप में नहीं देखता था ।”

(‘मुझ में देवजीवान का विकास’ ख. १. पृ. १३५)

“मैं जिस नेचर को अपनी भ्रान्ति से पहले अपना गौण सम्बन्धी अनुभव करता था, अब उसी को अपना मुख्य सम्बन्धी देखने और अनुभव करने लगा ।”

(वही पृ. १३८)

“मुझे विश्व की बहुत बड़ी महिमा दिखाई दी । अब वह मुझे जिस क्रूर गाध रूप से सत्य और सार नज़र आया उससे पहले उस क्रूर कभी नज़र नहीं आया । ...मैंने उपलब्ध किया कि जीवन का बनना और बिगड़ना तो नाना संबंधों के साथ भले अथवा बुरे सम्बन्ध सूत्रों की दशा पर निर्भर करता है ।”

“पूर्ण विश्व एक है और उसका प्रत्येक विभाग एक-दूसरे से जुड़ा हुआ है ।”

“भौतिक जगत से उदभिद, पशु और मनुष्य जगत का विकास हुआ है । यह सब जगत विश्व के सुविशाल शरीर में अंगन की न्याईं जुड़े हुए हैं और एक-दूसरे के साथ अति घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं ।”

“मनुष्य का असतितव विश्व का एक अंश है ।”



“विश्व के विविध असतितव विविध सम्बन्ध सूत्रों से जुड़ कर ही भला वा बुरा रूप धारण करते हैं |”

“देवत्व के द्वारा विश्व के साथ उच्च एकता स्थापन करने के योग्य बनना ही मनुष्य का परम लक्ष्य है |”

“विश्वगत नाना जगत्तों के सम्बन्ध में अपनी विनाशकारी नीच गतियों से रक्षा पाना मनुष्य के लिए सत्य-मोक्ष है | और उच्च गतियों में विकसित होकर धीरे धीरे आत्मिक पूर्ण गठन .... को प्राप्त होकर उन जगत्तों के साथ विकासकारी मेल वा एकता स्थापन करना ही उसका मुख्य लक्ष्य और परम आदर्श है |”

## नैतिकता और धर्म

धर्म के क्षेत्र में देव धर्म की तीसरी भेंट है नैतिक जीवन को धर्म के लिए आवश्यक बना देना | विश्वास चाहे कितने भी उच्च क्यों न हों, मानव की रक्षा नहीं कर सकते | मानव तो केवल उच्च जीवन प्राप्त करके ही धार्मिक बन सकता है | इसलिए देव धर्म किसी भी देवता या अवतार में विश्वास को महत्त्व नहीं देता | यह मानव इस वास्तविकता के प्रति जागरूक कर देता है कि नैतिक जीवन का निर्माण धार्मिक बनने की दिशा में पहली शर्त है | नैतिक जीवन के प्रमुख तत्व क्या हैं ? यहाँ हम फिर आइन्स्टाइन को उद्धृत करते हैं | वह कहते हैं ---- “मेरी दृष्टि में धार्मिक-चेतना-सपन्न व्यक्ति वह है, जिसने यथाशक्ति स्वयं को स्वार्थयुक्त इच्छाओं के बंधनों से मुक्त कर लिया है | जो उन विचारों, भावनाओं एवं स्पृहाओं में डूबा रहता है, जिनसे वह उनके परत्वमूलक वैयक्तिक मूल्य के कारण जुड़ा हुआ है | मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस अति-वैयक्तिक (Super-personal) परत्व की शक्ति एवं उसकी सर्वजयी सार्थकता में विश्वास की गहराइयाँ ही महत्त्वपूर्ण हैं | इस तत्व को किसी दैवी असतित्व से जोड़ा गया है कि नहीं, यह प्रश्न निरर्थक है, क्योंकि अन्यथा बुद्ध एवं स्पिनोज़ा जैसे वैयक्तियों को धार्मिक वैयक्तियों के रूप में गिन पाना संभव नहीं होता |”

अतिवैयक्तिक मूल्यों को परिभाषित कैसे किया जाए ? इस विषय में आइन्स्टाइन एक उदाहरण यों देते हैं--- “दैनिक जीवन की दृष्टि से एक बात हम जानते हैं कि मानव जीवन दूसरों के लिए है, सबसे अधिक उनके लिए जिनकी मुस्कानों और हितों पर हमारी प्रसन्नताएँ निर्भर करती हैं | साथ ही उन अनगिनत आत्माओं के लिए भी कि जिनकी नियति के साथ हम सहानुभूति के सूत्रों द्वारा बंधे हैं | मुझे स्वयं दिन में कितनी ही बार इस वास्तविकता का भान होता है कि मेरा बाह्य एवं आंतरिक जीवन मेरे साथियों --- मृत अथवा जीवित --- के परिश्रम द्वारा निर्मित हुआ है | मैंने जितना कुछ उनसे प्राप्त किया है उसका प्रतिदान देने के लिए मुझे घोर श्रम की आवश्यकता है | यह भाव कि

मैंने दूसरों की कृतियों से बहुत अधिक उधार लिया है --- प्रायः मेरी मानसिक शान्ति भंग कर देता है ।”

एकमात्र देवधर्म ही वह धर्म है जो कि मानव के नैतिक जीवन का विधिपूर्वक विकास करने के विषय में आग्रही है । इसका विश्वास है कि मानव, पशु, उदाभिद एवं भौतिक जगत मानव के उपकारी हैं । अतः मानव की प्रथम नैतिक साधना यह है कि वह इन चारों जगत्‌ओं के अस्तित्वों के प्रति अपने सम्बन्ध को पहचाने, उनके प्रति आदर, प्रशंसा, कृतज्ञता एवं सेवा का भाव विकसित करे तथा उनके सम्बन्ध में उच्चतर एकता उपलब्ध करे । यही एकमात्र धर्म है, जिसने वर्ष को सोलह भागों में बाँट दिया है । प्रत्येक भाग में देव-धर्मों को उस विशेष वर्ग के प्रति अपने सम्बन्ध गहरे एवं दृढ़तर बनाने के प्रति सचेत होना होता है । ऐसा वह उनके प्रति आदर, श्रद्धा, कृतज्ञता एवं सेवा के भावों के द्वारा ही कर सकता है । उदाहरण के लिए यह धर्म अपने अनुयाईयों से आग्रह करता है कि वे अपने माता-पिता के उपकारों को समझें और उनके प्रति सेवाकारी बनें और यह साधना पूरा एक महीना चलती है । ऐसी ही साधनाएं भाई-भगनी, जीवनसाथी, अपने पूर्वज, प्रिय दिवंगत आत्माओं, जाती, देश एवं मानवता आदि के सम्बन्ध में होती हैं । इसी क्रम में, देव-धर्मों को पशु, उद्भिद एवं निर्जीव जगत्‌ओं के अस्तित्वों के प्रति भी यही आदर, श्रद्धा, कृतज्ञता, सेवा एवं सामंजस्य का सम्बन्ध स्थापित करना होता है । यह ठोसतम, विशालतम और सम्भवतम नैतिकता केवल मानव तक ही सिमित ही होती, यह मात्र सजीव जगत तक ही सिमित नहीं होती बल्कि यह निर्जीव जगत तक विस्तृत होती है । प्रकृति के किसी भी अस्तित्व के साथ मानव का सम्बन्ध नैतिक सम्बन्ध ही हो सकता है ।

देव-धर्म के उच्चतम ग्रन्थ ‘देवशास्त्र’ के चौथे खंड में २६४ पृष्ठों में इन चारों जगत्‌ओं के सम्बन्ध में कर्तव्यों एवं वर्जित कर्मों की सूची दी गई है । उसके कुछ आदेशों से निम्नलिखित उदाहरण नैतिकता के क्षेत्र में देवधर्म के विकासमूलक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालता है ।

“भौतिक यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है कि वह भौतिक जगत के साथ अपने अस्तित्व के घनिष्ठ सम्बन्ध को भली-भान्त अनुभव करे .... वह भौतिक जगत के सम्बन्ध में अपने आप को प्रत्येक नीच गति से मुक्त करने व मुक्त रखने और उच्च-गति दायक प्रत्येक भाव के जागृत व उन्नत करने की आवश्यकता को भली-भान्त अनुभव करे ।”

इसी प्रकार वनस्पति जगत के सम्बन्ध में साधन करने वाले साधक के लिए यह आदेश है –

“उदभिद यज्ञ साधन कर्ता के लिए आवश्यक है कि वह उदभिद जगत के साथ अपने अति घनिष्ठ सम्बन्ध को भली-भान्त अनुभव करे ...इस सत्य को जाने और उपलब्ध करे कि कोई मनुष्य जैसे किसी मनुष्य व पशु के सम्बन्ध में कोई अनुचित क्रिया करके अपने आत्मिक जीवन की हानि करता है, वैसे ही किसी पौधे या वृक्ष के सम्बन्ध में भी कोई अनुचित क्रिया करके अपने आत्मिक जीवन की हानि करता है ।” विकासवादी दृष्टिकोण के लिए ही यह संभव है कि वह भौतिक और उदभिद जगत के साथ भी नैतिक सम्बन्ध को आवश्यक बताएं । संसार में और कोई धर्म यह नहीं बताता कि भौतिक, उदभिद जगत के साथ भी अकाट्य और विकास पर आधारित सम्बन्ध होने के कारण उनके सम्बन्ध में भी हमारे नैतिक कर्तव्य हैं ।

## आध्यात्मिकता और धर्म

आध्यात्मिकता के क्षेत्र में प्रवेश करने के लिए व्यक्ति को नैतिकता से भी आगे जाना होता है । आध्यात्मिकता क्या है ? प्रथम स्थान में तो यह आत्मा का ज्ञान अर्थात् उसकी उत्पत्ति, उसके स्वभाव, उसके परिवर्तनकारी नियमों, उसकी बुद्धि, विकास एवं मृत्यु का ज्ञान है । देव धर्म आत्मा का वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करता है । आत्मा के ज्ञान को अति-प्राकृतिक (Supernatural ) के अनुसार देखना उसी प्रकार गलत है जिस प्रकार भौतिक शास्त्र के ज्ञान को एनीमिस्टिक एरिस्टोटिलियन फिजिक्स (Animistic Aristotlean physics) के रूप में देखना मुख्यता है । आत्मा तो प्राकृतिक संसार का एक भाग है । इसकी उत्पत्ति को प्रकृति की विकासमूलक प्रक्रिया से बाहर समझना विकास के निर्विवाद तथ्य का निषेध करना है । भला इसका निषेध कैसे किया जा सकता है कि पशुओं की जीवनी शक्ति से ही मनुष्य का विकास हुआ है ? मानव आत्मा भी उसी प्रकार एक जीवनी शक्ति है जिस प्रकार पशु जगत में जीवनी शक्तियां होती हैं । इसकी यह विशिष्ट संज्ञा वास्तव में उन विकसित शक्तियों के कारण है जोकि पशु जगत की जीवनी शक्ति से भिन्न हैं ।

देव धर्म इस वैज्ञानिक सत्य की शिक्षा देता है कि मानव आत्मा प्रकृति का एक भाग है । यह परिवर्तन, वर्धन एवं विनाश के नियमों के अधीन है । किन्ही परिस्थितियों में यह संवर्धित होता है, उसी प्रकार जिस प्रकार कि किन्ही परिस्थितियों में हमारा शरीर; और जिस प्रकार किन्ही परिस्थितियों में हमारा शरीर विनष्ट होता है उसी प्रकार किन्ही परिस्थितियों में आत्मा भी विनष्ट होता है । सात्विक भावों में विकसित हो जाने पर इसकी शक्ति एवं क्षमता बढ़ जाती है । जब इसमें नीच अनुराग और नीच घृणा बढ़ जाते हैं, जिनके द्वारा यह दूसरों को हानि पहुँचाने का चिन्तन एवं क्रिया करने लगता है, तो यह शक्ति और स्वास्थ्य खो बैठता है । आत्मा के जीवन एवं मृत्यु के नियमों का ज्ञान ही

आध्यात्मिक ज्ञान है | इस समस्त विवरण से स्पष्ट है कि देव धर्म को केवल नैतिकता तक सीमित समझना गलत है | नैतिकता के अर्थ के रूप में सभी संबंधों में सात्विक भावों के विकास का आग्रही हुए भी देव धर्म आत्मा को उसकी उत्पत्ति, स्वाभाव, उसकी जीवन-मृत्यु परिस्थितियाँ आदि देखने-समझने की ओर प्रबुद्ध करता है | देव समाज के संस्थापक की शिक्षा के अनुसार---

- (१) मनुष्यात्मा के गठन प्राप्त रूप;
- (२) उसके इस रूप में उसकी जिन जिन नीच अनुराग और नीच घृणा शक्तियों के कार्य से नाना प्रकार के रोगों व पतन की उत्पत्ति होती है, उन शक्तियों, रोगों और पतन;
- (३) उसके उस पतन के महा शोचनीय और विनाशकारी और दुखदायी फलों;
- (४) अधिकारी होने पर वह अपनी योग्यता अनुसार नेचर के अटल नियमों पर स्थापित जिस विधि के द्वारा अपनी पतनकारी शक्तियों के कार्य से जहाँ तक वास्तविक मोक्ष पा सकता है, उस विधि, और उस मोक्ष और उसमें उच्च भावों व उच्च अनुरागों की जागृति और उन्नति से जहाँ तक उच्च जीवन का विकास हो सकता है, उस उच्च जीवन के विकास की आवश्यकता और उसके अति वांछनीय फलों और उनकी प्राप्ति के विषय में जो सत्य ज्ञान है, वही सत्य धर्म का ज्ञान है |”

फिर भी आध्यात्मिक सत्यों का ज्ञान पा लेने मात्र से ही हम जीवन में धार्मिक नहीं बन जाते | यह ज्ञान आध्यात्मिक बोध में परिवर्तन होना चाहिए | वही व्यक्ति धार्मिक है, जो कि अपने आत्मा की भलाई के विषय में सोचता है एवं तदनुसार कर्म करता है, उसी प्रकार जैसे कि अपने शरीर की भलाई के विषय में सोचने एवं क्रिया करने वाला व्यक्ति ही स्वास्थ्य प्रेमी कहा जा सकता है | देव धर्म संस्थापक ने इसे अत्यंत स्पष्ट कर दिया है | वह फरमाते हैं---

“कोई मनुष्य (चाहे वह कोई भी धर्म मत रखता हो और चाहे किसी देश व जाती वा सम्प्रदाय का हो) जब तक अपने शारीरिक, स्नायुमूलक, अहंमूलक, धन-संपत्ति और संतान आदि अन्य विषयमूलक विविध नीच अनुरागों और नीच अनुरागों से जिन जिन नीच- घृणाओं, नाना प्रकार के मिथ्या विश्वासों, मिथ्यादृष्टि, मिथ्याचारों और नाना प्रकार के अन्य पतनकारी दुराचारों की उत्पत्ति होती है |

- (१) उनके दासत्व से सत्य मोक्ष,
- (२) उनके विकारों से सत्य हार्दिक पवित्रता,
- (३) पर-सेवा उत्पादक विशुद्ध सात्विक व उच्च भावों,

(४) सत्यमोक्ष, सत्यपवित्रा, सात्विक भाव विकासक सत्य, उच्च संगत व साधनों का आकांक्षी व अनुरागी नहीं बनता, तब तक वह एक व दूसरे प्रकार के मोटे मोटे पापों से बचा रह कर व विरत हो कर भी सच्चे धर्म-राज्य व सच्चे धर्म-जीवन में प्रवेश नहीं करता और सच्चा धार्मिक नहीं बनता ।”

देव धर्म केवल इस अर्थ में ही आध्यात्मिक नहीं है कि यह व्यक्ति में आत्मा की वास्तविकता की तथा उसके विकास सम्बन्धी नियमों की चेतना जगा देता है । अपितु इस लिए भी, क्योंकि यह धर्म आत्मा को मोक्ष अथवा विकास के रूप में अपनी सार्थकता उपलब्ध करने के लिए उचित परिस्थितियाँ भी प्रदान करता है । आत्मा के विकास के सच्चे आकांक्षी को यह धर्म भगवान् देवात्मा के साथ जोड़ देता है, क्योंकि सर्वोच्च सुन्दर आत्मा के आध्यात्मिक-सौन्दर्य-परिपूर्ण-अनुभव प्रदान करने के साथ ही साथ नीच अनुरागों एवं नीच घृणाओं से मोक्ष प्राप्त करने में तथा मानव आत्मा की वास्तविक नियति बनाने वाली शुभ सात्विक शक्तियों को विकसित करने में सहायता भी देता है ।

यदि आपको एक ऐसे धर्म की तलाश है जोकि अपनी वस्तु एवं आत्मा दोनों में विज्ञान सम्मत हो, विश्व एवं जीवन सम्बन्धी दृष्टि में विकासमूलक हो, विभिन्न संबंधों के विस्तृत कर्तव्यों के प्रति नैतिक हो तथा आत्मा सम्बन्धी ज्ञान में मुक्ति के सही स्रोत के सम्बन्ध में तथा आत्मा के यथाशक्ति विकास करने में आध्यात्मिक हो, तो केवल देव धर्म ही आपका एकमात्र चुनाव है और हो सकता है ।

---